इन्द्रियाणि मनो
बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष
ज्ञानमावृत्य देहिनम्
॥४०॥

इन्द्रियाणि –

इन्द्रियाँ; मनः –

मन; बुद्धिः –

बुद्धि; अस्य – इस काम का; अधिष्ठानम् – निवासस्थान; उच्यते – कहा जाता है; एतैः– इन सबों से; विमोहयति – मोहग्रस्त करता है ; एषः – यह

काम; ज्ञानम् – ज्ञान को; आवृत्य – ढक कर; देहिनम् – शरीरधारी को |

Text

इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि इस काम के निवासस्थान हैं | इनके द्वारा यह काम जीवात्मा के वास्तविक ज्ञान को ढक कर उसे मोहित कर लेता है |

# गीता भूषण टीका

क्योंकि शत्रु ने अपने स्थान पर पहले से ही पकड़ बना ली है इसलिए यह बड़ी ही सुगमता से विजयी हो जाता है | यह इस श्लोक में कहा जा रहा है |

इन्द्रियाँ ,मन और बुद्धि इस काम के स्थान बन जाते हैं ;वे इन्द्रिय विषयों

को भोगने दे द्वारा , मन के संकल्प के द्वारा और बुद्धि के अध्यवसाय के द्वारा, काम को प्रकट करने वाले दुर्ग के समान हैं|

इन्द्रिय विषय इस राजधानी के जन हैं |भौतिक इन्द्रियों ,मन और बुद्धि के द्वारा जो इन्द्रिय विषयों की खोज में लगे

रहते हैं , यह काम उस जीव को मोहित कर देता है जिसे आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए था परन्तु जो भौतिक पदार्थों से बनी देह को धारण कर रहा है|

मोहित करने का अर्थ है की काम , जीव को आत्म

ज्ञान से विमुख कर देता है और विषय रस में प्रवृत कर देता है |

Purport

चूँकि शत्रु ने बद्धजीव के शरीर के विभिन्न समारिक स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया है,

अतः भगवान् कृष्ण उन स्थानों का संकेत कर रहे हैं जिससे शत्रु को जीतने वाला यह जान ले कि शत्रु कहाँ पर है | मन समस्त इन्द्रियों के कार्यकलापों का केन्द्रबिन्दु है, अतः जब हम इन्द्रिय-विषयों के सम्बन्ध में सुनते हैं तो मन

इन्द्रियतृप्ति के समस्त भावों का आगार बन जाता है | इस तरह मन तथा इन्द्रियाँ काम की शरणस्थली बन जाते हैं | इसके बाद बुद्धि ऐसी काम्पूर्ण रुचियों की राजधानी बन जाती है | बुद्धि आत्मा की निकट

पड़ोसन है | काममय बुद्धि से आत्मा प्रभावित होता है जिससे उसमें अहंकार उत्पन्न होता है और वह पदार्थ से तथा इस प्रकार मन तथा इन्द्रियों से अपना तादात्मय कर लेता है | आत्मा को भौतिक इन्द्रियों का भोग करने की

लत पड़ जाती है जिसे वह वास्तविक सुख मान बैठता है | श्रीमद्भागवत में (१०.८४.१३) आत्मा के इस मिथ्या स्वरूप की अत्युत्तम विवेचना की गई है –

यस्यात्मबुद्धिः कृणपे त्रिधातुके स्वधीः कल त्रादिषु भौम इज्यधीः | यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचि ज्ज नेष्व भिज्ञे षु स एव गोखरः ||

“जो मनुष्य इस त्रिधातु निर्मित शरीर को

आत्मस्वरूप जान बैठता है, जो देह के विकारों को स्वजन समझता है, जो जन्मभूमि को पूज्य मानता है और जो तीर्थस्थलों की यात्रा दिव्यज्ञान वाले पुरुष से भेंट करने के लिए नहीं, अपितु स्नान करने के लिए करता है उसे गधा या

बैल के समान समझना चाहिए।”

**तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ**
**नियम्य भरतर्षभ ।**
**पाप्मानं प्रजहि ह्येनं**
**ज्ञानविज्ञाननाशनम्**
**॥४१॥**

तस्मात् - अतः; त्वम् - तुम; इन्द्रियाणि - इन्द्रियों को ; आदौ - प्रारम्भ में; नियम्य - नियमित करके; भरत-ऋषभ - हे भरत वंशियों में श्रेष्ठ; पाप्मानम् - पाप के

महान प्रतीक को; प्रजहि - दमन करो; हि - निश्चय हि; एनम् - इस; ज्ञान - ज्ञान; विज्ञान - तथा शुद्ध आत्मा के वैज्ञानिक ज्ञान का; नाशनम् - संहर्ता, विनाश करने वाला |

Text

इसलिए हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! प्रारम्भ में ही इन्द्रियों को वश में करके इस पाप का महान प्रतीक (काम) का दमन करो और ज्ञान तथा आत्म-

साक्षात्कार के इस विनाशकर्ता का वध करो।

## गीता भूषण टीका

यह काम रुपी शत्रु , भोगोंमुख इन्द्रियों के द्वारा , उस जीव के ज्ञान को आवृत कर देता है जो सभी इन्द्रियों के संयम के द्वारा आत्म ज्ञान को प्राप्त करने

में प्रयास रत है |इसलिए ज्ञान के प्रारम्भ से ही , सभी इन्द्रियों को निष्काम कर्म योग के द्वारा नियमित करते हुए और उन्हें आत्मा के लिए अनुकूल करते हुए – तुम्हें जो भौतिक इन्द्रिय , मन और शरीर धारी हो – इस

काम रुपी शत्रु को नष्ट कर देना चाहिए |
तुमको ऐसा करना ही चाहिए क्योंकि यह काम, शास्त्रिक ज्ञान जिसके द्वारा आत्मा को शरीर से पृथक देखा जाता है और आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव किया जाता है उसको आवृत करने वाला है |

# Purport

भगवान् ने अर्जुन को प्रारम्भ से ही इन्द्रिय-संयम करने का उपदेश दिया जिससे वह सबसे पापी शत्रु काम का दमन कर सके जो आत्म-साक्षात्कार तथा आत्मज्ञान की उत्कंठा को

विनष्ट करने वाला है । ज्ञान का अर्थ है आत्म तथा अनात्म के भेद का बोध अर्थात् यह ज्ञान कि आत्मा शरीर नहीं है । विज्ञान से आत्मा की स्वाभाविक स्थिति तथा परमात्मा के साथ उसके सम्बन्ध का विशिष्ट ज्ञान सूचित होता

है । श्रीमद्भागवत में (२. ९. ३१) इसकी विवेचना इस प्रकार हुई है -

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् । सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥

"आत्मा तथा परमात्मा का ज्ञान अत्यन्त गुह्य एवं रहस्यमय है, किन्तु जब स्वयं भगवान् द्वारा इसके विविध पक्षों की विवेचना की जाती है तो ऐसा ज्ञान तथा विज्ञान समझा जा सकता है ।" भगवद्गीता हमें आत्मा का सामान्य

तथा विशिष्ट ज्ञान (ज्ञान तथा विज्ञान) प्रदान करती है । जीव भगवान् का भिन्न अंश हैं , अतः वे भगवान् की सेवा के लिए हैं । यह चेतना कृष्णभावनामृत कहलाती है। अतः मनुष्य को जीवन के प्रारम्भ से इस

कृष्णभावनामृत को सीखना होता है, जिससे वह पूर्णतया कृष्णभावनाभावित होकर तदनुसार कर्म करे ।

काम ईश्वर-प्रेम का विकृत प्रतिबिम्ब है और प्रत्येक जीव के लिए स्वाभाविक है । किन्तु यदि किसी को

प्रारम्भ से ही कृष्णभावनामृत की शिक्षा दी जाय तो प्राकृतिक ईश्वर-प्रेम काम के रूप में विकृत नहीं हो सकता । एक बार ईश्वर-प्रेम के काम रूप में विकृत हो जाने पर इसके मौलिक स्वरूप को पुनः प्राप्त कर पाना दुःसाध्य हो जाता है

। फिर भी, कृष्णभावनामृत इतना शक्तिशाली है कि विलम्ब से प्रारम्भ करने वाला भी भक्ति के विधि-विधानों का पालन करके ईश्वरप्रेमी बन सकता है। अतः जीवन की किसी भी अवस्था में, या जब भी

इसकी अनिवार्यता समझी जाय, मनुष्य कृष्णभावनामृत या भगवद्भक्ति के द्वारा इन्द्रियों को वश में करना प्रारम्भ कर सकता है और काम को भगवत्प्रेम में बदल सकता है , जो

मानव जीवन की पूर्णता की चरम अवस्था है ।